धर्म एवं सम्प्रदाय

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

धर्म व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ता है। धर्म संजीवनी है और धर्म विकास का मार्ग है। धर्म सम्प्रदाय के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं। जल का स्वभाव शीतलता है, अग्नि का स्वभाव उष्णता है। वस्तु कभी भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती है। आत्मशुद्धि के साधन को धर्म कहा जाता है। धर्म को कल्याणकारी कहा गया है। अहिंसा, संयम और तप उत्कृष्ट मंगल कहे गये हैं। मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना अर्थात प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धि भिन्न–भिन्न है। भिन्न–भिन्न मत–मतान्तरों के कारण ही सम्प्रदाय बनते हैं। सम्प्रदाय धर्म को सीमित कर देता है। धर्म सबको धारण करने वाला है। धर्म की अनेक परिभाषाएं की गयी है जो धर्म के मर्म को व्यक्त करती हैं। आत्मा को शुद्ध करने की प्रक्रिया को धर्म कहते हैं। धर्म का सम्बन्ध अध्यात्म के साथ है। इसको एक उदाहरण से समझाया जा सकता है। केले के ऊपर छिलका होता है। छिलका सम्प्रदाय है और गुदा उसका धर्म है। छिलके के बिना गुदा और गुदा के बिना छिलका नहीं रह सकता। धर्म की आराधना के लिए सम्प्रदाय बनाया गया है। धर्म मूल तत्व है और सम्प्रदाय धर्म को प्राप्त करने का मार्ग है। गन्तव्य एक है। रास्ता अलग–अलग है।

मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है। पत्ते पर स्थित ओस बिन्दु की तरह हवा के झकोरे खाकर नाशवान है। इस छोटे से आयु खंड में जिसने जितना धर्म कर्म कर लिया, उसका जीवन उतना ही सार्थक है और जिसने व्यर्थ में ही जीवन को गवा दिया, वह अपने जीवन के मूल्य को नहीं समझ पाया। जीवनकाल में धर्म ही मनुष्य को त्राण दे सकता है। धर्म की व्याख्या करने के लिए इसके लौकिक और पारलौकिक स्वरूप को समझना आवश्यक है। लौकिक धर्म वह धर्म है जिसे हम इस लोक में करते हैं और उसका फल भोगते हैं। पारलौकिक धर्म इस लोक से परे है और वही मानव जीवन की सच्ची कमाई है। इसी धर्म को प्राप्त करने के लिए मानव को प्रयास करना चाहिए। इस तथ्य की सत्यता को हृदयंगम कर भारतीय ऋषियों ने अपने वेद ज्ञान के संस्मरणों, निष्कर्षों को स्मृति शास्त्र के रूप में मानव समाज के हितार्थ

प्रगट किया। जिससे वे भोगवाद की आसुरीधारा में न बहकर आत्मकल्याण का सर्वप्रथम ध्यान रखें और अर्थ तथा काम के साथ ही धर्म और मोक्ष के साधन के लिये भी प्रयत्नशील रहें।

मनुष्य का आध्यात्मिक विकास तभी सम्भव है, जब वह अपना आचरण शुद्ध रखे और संयम नियम का पालन करता रहे। इसके लिये स्मृतिकारों ने सोलह संस्कारों का विधान बनाया है, जिसमें मनुष्य को जन्म से मरण तक अपना रहन–सहन शुद्ध और सात्विक रखकर मलिनता, अपवित्रता से दूर रहने का आदेश दिया गया है। मलिनता और अपवित्रता चाहे बाह्य हो अथवा चाहे आन्तरिक, मनुष्य के उच्चभावों को नष्ट करके उसे पाप कर्मों की तरफ प्रेरित करती हैं। इसलिये मानव को सुसंस्कारित बनाने के उद्देश्य से अनेक नियम बनायें, जिससे वे अनुशासन, मर्यादा, नैतिकता आदि की शिक्षा प्राप्त करके वास्तविक मनुष्यता का विकास कर सकें।

जन्म के समय मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में विशेष अन्तर नहीं होता, वरन् यदि देखा जाय तो मनुष्य का नवजात शिशु अन्य पशुओं के बच्चे की अपेक्षा अधिक असमर्थ और असहाय स्थिति में होता है। कुछ बड़ा होने पर भी वह स्वयं कोई नयी बात कर सकने में असमर्थ होता है। परिवार और समाज तथा अपने चतुर्दिक वातावरण से वह बहुत कुछ सीखता है। इसलिये जैसे संस्कार उसमें डाले जायेंगे वैसा ही आचरण वह समाज में करेगा। भारतीय संस्कृति पुरुषार्थ प्रदान संस्कृति है। जीवन के चार पुरुषार्थ हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। यह जीवन पद्धति है। धर्म व्यक्ति में मानवता लाता है। धर्म के बिना मनुष्य पंगु है। मनुष्य के अन्दर तीन प्रकार की चेतना हैं– पशु चेतना, मानव चेतना और दैवी चेतना। जो पशु चेतना हैं वह निष्क्रिय चेतना है। इसमें मनुष्य बिना विचारे ही कार्य करता है। मानव चेतना बौद्धिक चेतना है। इसमें मानव जो कुछ भी कार्य करता है वह सोच विचार के कार्य करता है। दैवी चेतना जगत् कल्याण की चेतना है। धार्मिक वह होता हैं जो धर्म का पालन करता है। धार्मिक अनैतिकता नहीं करता बल्कि नैतिक कार्य करता है। सभी को समदृष्टि से देखता है। सामाजिक व्यवस्था में मनुष्य चिन्तन करता है। उसका आभामण्डल शुद्ध होता है। आभामण्डल से व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिवर्तन के संकेत होने लगते हैं।

आध्यात्मिक चेतना भारत के कण–कण में समायी हुई है। आज के बदले हुए युग में कुछ लोग राक्षसी प्रवृत्ति के हो गये हैं जिसके कारण दुराचार की प्रवृत्ति बढ़ रही है। भ्रष्टाचार,

अनैतिकता, बलात्कार जैसी घटनाएं आये दिन सुनायी देती है। आज के लोग भ्रष्टाचार को शिष्टाचार कह रहे हैं। धार्मिक दृष्टि से इसे रोका जा सकता है। पहले चरित्रवान लोगों की पूजा होती थी, किन्तु आजकल चरित्र को महत्व ही नहीं दिया जा रहा है। गुरु वशिष्ठ, विश्वामित्र जैसे महर्षियों ने राजसत्ता का नियन्त्रण किया था। राजा से भी अधिक इन लोगों का सम्मान था। धर्म को सीखना, आत्मसात करना, प्रयोगात्मक रूप से उसका आचरण करना आवश्यक है। बच्चों को धर्म के बारे में शिक्षा दी जानी चाहिए। परिवार का जैसा वातावरण रहता है, वैसे ही बच्चा बन जाता है।